इक्कीसवीं सदी में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था में गतिशीलता

डॉ0 आरती यादव,

सहायक आचार्य

दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ0प्र0)

Email-id – artigkpuniv@gmail.com

सारांश

सततता और परिवर्तन अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के संवाहक है। राजनीतिक प्रणाली में कुछ ऐसे प्रतिदर्श भी है जो परिवर्तन को अपने में समाहित किए हुए है। प्रभुत्ववादी व्यवस्था में एक समान जनांकिकी होती है, जो परिवर्तन को लोकतांत्रिक राज्यों के सापेक्ष अधिक तेजी से स्वीकार करती है। लोकतांत्रिक राज्यों में बहुप्रजातीय जनांकिकी होती है। इसके अलावे सामाजिक संस्तरण और बहुदलीय प्रणाली भी शामिल होती है। तकनीकी अन्वेषणों ने परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त किया है। लेकिन राजनीतिक प्रणाली ने उन्हीं मानकों को अपनाया है जो उनके हितों के सर्वाधिक अनुकूल होता है। अतः निर्णयन प्रक्रिया में तकनीकी परिवर्तनों के सापेक्ष कोई फर्क नहीं पड़ता है। आर्थिक अभिरूचियों ने हर स्तर के निर्णयन प्रक्रिया एवं निर्णयन क्षमता को प्रभावित किया है।

Key words-: *राष्ट्र–राज्य, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था, अन्तर्राष्ट्रीय संबंध, वैश्विक, बहुध्रुवीय, महाशक्ति ।*

प्रत्येक सदी में एक ऐसा पड़ाव आता है जब राष्ट्र–राज्यों के अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था के ऊपर विचार–विमर्श किया जाता है। वेस्टफेलिया की व्यवस्था से कुछ हद तक एक व्यवस्था देने का प्रयास हुआ था, परन्तु दुनियाँ ने राष्ट्रों की व्यवस्था को समझने में असफलता दिखायी। दुनियाँ गवाह है हिंसक विश्व व्यवस्था पर सवाल किये गए कि इस व्यवस्था में राष्ट्रों का अस्तित्व नहीं बच सकता। वार्ताओं में जो सवाल पैदा किये जाते है उसमें या तो युद्ध के ऊपर केन्द्रित होते हैं या उस व्यवस्था की बात होती है जिसकी तैयारी कोई राष्ट्र किये ही नहीं है। हेडली बूल व्यवस्था को परिभाषित करते हुए कहते है, 'एक पद्धति (मानव का व्यक्तिगत या समूह में संबंध) जिसका कोई विशेष परिणाम आता है, जो सामाजिक जीवन की उपलब्ध संसाधनों में निश्चित लक्ष्यों और मूल्यों की तरफ आगे ले जाती

है।[1] बूल का पारम्परिक अध्ययन विश्व राजनीति में व्यवस्था पर केन्द्रित है, जिसमें कानूनों व संस्थाओं को सामान्य ढ़ॉचें में लाने की बात कही है जो राज्यों की अराजकतावादी समाज में विकसित हुयी है। यह अराजकतावादी इस दृष्टि से है कि यहॉ कानून को लागू करने या सहयोग करने वाली कोई सामान्य शक्ति नहीं है, लेकिन ये ऐसे समाज है जहॉ राज्यों को सामान्य कानून तथा मूल्यों के प्रति जागरूकता है, सामान्य संस्थाओं के कार्यों में पारस्परिक सहयोग है, और इन कानूनों तथा कार्य करने वाली संस्थाओं की निगरानी रखने के साथ–साथ सामान्य हित पर भी जागरूकता बनी रहती है। यह निश्चित रूप से कमजोर समाज है, जहॉ पर तीन प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक जीवन के लक्ष्य राज्यों में समाज द्वारा दबाकर रखे गये है, राज्यों से व्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा के संसाधन, और इन्हें लागू करवाना लेकिन राज्य व समाज से युद्ध व हिंसा को पूरी तौर पर खत्म न करना।[2] व्यवस्था की इस पृष्ठभूमि में यह देखना सुखद होगा कि क्या राज्यों ने कभी ऐसा प्रयास किया है जिसे हेडली बुल ने या रेमण्ड एरान ने कहा है कि संयुक्त राष्ट्र की तरह ही अन्य संस्थाओं को तैयार करना चाहिए।

अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में राष्ट्रों के लिए यह अपवाद की स्थिति है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था में स्वच्छ व शांतिपूर्ण समय आए। जब 'राज्य' की बात की जा रही है तो इसका आशय सभी आस्तित्ववान राज्यों या राज्यों के समूह या विश्व घटनाओं में प्रमुख भूमिका निभाने वाले राज्यों से भी है। यह बहुत हद तक परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

विश्व में दो प्रकार के देशों का समूह है, एक समूह उनका है जो नियम बनाते है और दूसरा उनका है जो नियमों का पालन करते है। यह व्यवस्था कमोबेश द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था में सामान्य रूप से दृष्टिगत होती है। इससे स्पष्ट है कि अमेरिका के आधिपत्य से शांति व व्यवस्था के ऊपर प्रभाव पड़ा। वास्तव में 1945 से लेकर 1990 की अवधि गंभीर संकट, संघर्ष और खतरे की रही है। शीत युद्ध की वजह से अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में ज्यादे ध्रुवीकरण हुआ जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों की मनमाना व्यवस्था की गयी। अपने अस्तित्व के संघर्ष में, दोनों महाशक्तियॉ संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के राज्य सम्प्रभु तथा अहस्तक्षेप के सिद्धांतों का निरंतर उल्लंधन करते रहे। 21 वीं सदी के दूसरे दशक

में उदारवादी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के प्रति ज्यादे आक्रोश देखा गया, जिससे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के बहुत सारे विद्वान मानते थे कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के परिदृश्य में ज्यादे ध्यान रखने की आवश्यकता थी। हालॉकि इस पूरी बात को स्वीकार नहीं किया जा सकता लेकिन इसमें सच्चाई का अंश है, इस पर विश्वास का एक कारण भी है क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था में ऐसा महसूस किया जा रहा था। इसकी वजह से अर्थव्यवस्था के अन्दर निरंतर तनाव की स्थिति बनी रहती है, जिससे जनजातीयवाद और राष्ट्रवाद का उभार हुआ, जिससे अन्तर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय संस्थाओं को स्थापित करने में आत्मविश्वास की कमी आयी, जो विरोध का प्रमुख कारण बना और यही इस पेपर का महत्व बताता है। संयुक्त राज्य अमेरिका जिसे प्रभुत्वशीलता स्थिरता सिद्धांत में विश्वास है, अपने को विश्व में सुपर पावर मानता है और नहीं चाहता है कि उसके स्टेटस को कोई चुनौती दे। दुर्भाग्यवश राजनीतिक व्यवस्था के क्षेत्र में बहुध्रुवीय व्यवस्था के उदय के कारण विश्व के कई देशों के पास यह क्षमता विकसित हुयी है जिससे अमेरिका की स्वीकार्यता में कमी और उसमें प्रति सम्मान में कमी, द्वितीय विश्व युद्ध के बाद आयी है। विश्व भर के विद्वानों का मानना है कि इसे हम इस रूप में देख सकते है कि 'संयुक्त राज्य अमेरिका का पतन और अन्य का उदय।' विद्वानों का एक दूसरा समूह भी है जो मानते है कि वर्तमान सदी, एशिया की सदी है और गंभीरता से विश्वास करते है कि उभरती हुयी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था में शक्ति का स्थानांतरण हो रहा है। इसके ऊपर पूरे विश्व में विचार–विमर्श चल रहा है, सभी वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था में शक्ति के स्थान का अध्ययन करने में लगे है। इस परिदृश्य में स्थिर आर्थिक निदेशांक, तुलनात्मक सैन्य क्षमता और असंभावित समृद्धि के कारण उपेक्षित राज्य भी केन्द्र में आ गये है, अमेरिका अपने को नियम बनाने वाला मानता रहा है, विश्व की ज्यादेतर घटनाओं पर प्रतिक्रिया व बयान देता है और एजेण्डा तय करने में अपने प्रभाव को दिखाता है। अमिताव आचार्य भी मानते है कि, ''अमेरिकी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था का अन्त' चल रहा है।'' लेकिन मै स्पष्ट करना चाहता हूॅ कि यह 'एक ध्रुवीय व्यवस्था' का अंत नहीं है बल्कि यह अमेरिका प्रभाव क्षेत्र में आयी हुयी कमी है। एक ऐसा देश जो उदारवादी प्रभाव का हो वही हमारे भविष्य को संवार सकता है। एकमात्र महाशक्ति का वैश्विक प्रभाव का युग, जिसको दुनियाँ ने पहले भी अनुभव किया है – ब्रिटेन के अन्दर, उसके बाद अमेरिका के अन्दर, उस युग का अन्त हो

गया है।[3] अमेरिका को छोड़कर किसी अन्य देश द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था का नेतृत्व संभव है, आचार्य का मानना है कि इसका यह मतलब नहीं है कि ''उभरती हुयी शक्तियॉ'' अकेले या सामुहिक रूप से यह बतायें कि अमेरिकन अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था समाप्त हो चुकी है। सही है कि इनकी भूमिका भविष्य के अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण है। लेकिन यदि उदारवादी प्रभावकारिता व्यवस्था के विचार 'पश्चिम की परछाई' को ठीक से प्रस्तुत किया जाय। उभरती हुयी शक्तियों की भूमिका को लेकर जो विचार–विमर्श हो रहा है उसे हम 'बाकी का प्रचार' कह सकते है। व्यापक रूप में अमेरिकी अन्तर्राष्ट्रीय रजनीतिक व्यवस्था की भूमिका कमजोर हो रही है जिसमें वह अपनी वैश्विक शासन के दायित्वों का सही ढ़ंग से नहीं निभा रहा है। एकता दृष्टि और संसाधनों की कमी के कारण एक वैकल्पिक वैश्विक व्यवस्था तैयार करने का विकल्प इन उभरती हुयी शक्तियों के माध्यम से दिखाई दे रहा है।[4]

पिछली शताब्दी में जो भी परिवर्तन हुए वे स्पष्टतः परिलक्षित हुए, उससे वैश्विक सत्ता की संरचना तो प्रभावित हुई ही, साथ ही साथ राष्ट्रों के मध्य संबंधों में परिवर्तन भी हुआ। उपनिवेश के युग का समापन हो चुका था, लेकिन द्विध्रुवीकरण की शुरूआत एशिया और अफ्रीका के मध्य दरारों से उत्पन्न हो चुकी थी। शीत युद्ध की शुरूआत हो गई। इसका लक्षण तभी प्रतीत हुआ जब अमेरिका ओरह रूस में प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो गई। यह प्रवृत्ति लगभग साढ़े चार दशकों तक जारी रही। इसी दरम्यान, बर्लिन की दीवार भी गिर चुकी थी। अमेरिका की संप्रभुता और सर्वोच्चता भी उभर कर सामने आ चुकी थी। इसके साथ ही साथ कम्युनिस्टों की विचारधारा भी बेनकाब हो चुकी थी। इस वैश्वीकरण की प्रक्रिया में लगभग सारे देश शामिल हो चुके थे। इस दुनियॉ के समूचे बाजारों में एकात्म स्थापित हो चुका था। क्षेत्रीय और वैश्विक स्तर पर सहयोग विकसित हो चुके थे और उनका सतत् निरीक्षण एवं सन्निरीक्षण हो चुका था। कम से कम संबंधों में इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रहा था। राजनैतिक निर्णयन प्रक्रियाओं के द्वारा आर्थिक संबंधों का निर्धारण हो रहा था। कूटनीति का इस्तेमाल और सयोजन अनुकूल सत्ता के निर्माण में किया जा रहा था। लेकिन पश्चिमी

देशों की आंतरिक समस्याएँ ऐसी परिस्थितियॉ पैदा कर गई कि संरक्षणवादी नीतियों पर अमल करना आवश्यक हो गया था।

किसी भी दो राष्ट्रों के मध्य सहयोग और प्रतिस्पर्धा ही इनके मध्य संबंधों को परिभाषित और प्रभावित करते है। इनके द्वारा ही समस्याएँ समाधान की तरफ अग्रसर होती है। अमेरिका ने जिस तरह की संरक्षणवादी नीतियों का सूत्रपात एवं कार्यान्वयन किया है, उससे ही इसके सहयोगी देशों के मध्य अच्छे संबंध विकसित हुए है। कई एक क्षेत्रों मे विभिन्नता और भिन्नता होने के बावजूद भारत ने चीन और अमेरिका के साथ 'समूह भावना' विकसित की है ताकि समस्याओं पर एक समान, उदार और व्यापक दृष्टिकोण विकसित हो और आतंकवाद की समस्या का समाधान हों। इसके साथ ही साथ रणनीतिक संबंधों को विकसित करने की आवश्यकता पर बल दिया गया। चीन और भारत में संसाधनों को लेकर प्रतिस्पर्धी रही है, लेकिन फिर भी इन्होंने सामान्यतः व्यवसायिक संबंध विकसित किए। हालॉकि भारत ने चीनी उत्पादों के अपनाए जाने पर कड़ा वैचारिक प्रतिरोध किया था। भारत ने अमेरिका के साथ भागीदारी विकसित की ताकि भारतीय सागर से होते हुए सुरक्षित व्यापारिक मार्ग प्रशस्त किए जाय। इसके लिए भारत ने 'भारतीय प्रशांत प्रभाग' की स्थापना की जिसको विदेश मंत्रालय से संबद्ध किया गया जिसका उद्देश्य था कि 'इंडियन ओशन रिम एसोसियेशन' का गठन किया जाय। इसके निमित्त त्रिस्तरीय संगठनों – इंडिया, जापान यू0 एस0 , इंडिया – ऑस्ट्रेलिया, इंडोनेशिया, और इंडिया – ऑस्ट्रेलिया, जापान का गठन किया गया। जिनको 'इंडियन ओशन रिम एशोसियेशन' की पूर्ण जिम्मेदारी की गई। अमेरिका के अनुसार, भारत एक दीर्धकालिक सहयोगी रहा है। इसलिए हम इसे 'औपचारिक सहयोगी' के रूप में कत्तई नहीं देख सकते है। जब तक भारत और अमेरिका रणनीतिक सहयोगी नहीं हो जाते है, तब तक स्वतंत्र एवं मुक्त रूप से भारतीय प्रशांत क्षेत्र का अस्तित्व कायम नहीं हो सकता है।[5]

भारत की आर्थिक एवं सैन्य शक्ति से अमेरिका भलीभॉति परिचीत रहा है। भारत ने नाभिकीय क्षमता सन् 1974 में ही प्राप्त कर ली थी। सन् 2019 के अप्रैल महीने में इसने अंतरिक्ष में किसी भी लक्ष्य को भेदने की क्षमता हासिल कर ली। इसने विश्व के सबसे बड़े हथियार आयातक देश का दर्जा हासिल कर लिया और अब यह देश सबसे अधिक खर्चा रक्षा

के मद में करता आ रहा है। अमेरिका और पश्चिमी यूरोपीय देश भारत को विशाल आयुध बाजार के रूप में देखते रहे है। जनवरी के उत्तरार्ध में अमेरिकी सरकार ने वेनेजुएला पर आर्थिक प्रतिबंध लगाया। भारत की तेल का आयात करने वाली कम्पनियों को वेनेजुएला से तेल खरीदने पर प्रतिबंधित किया गया है।[6] इस प्रकार महाशक्तियों और छोटे राष्ट्रों के बीच संबंध वैश्वीकरण के दौर में भी अपरितर्वर्तित रहे। लेकिन चीन के भारत के साथ द्विपक्षीय विवाद होने के बावजूद चीन के साथ कार्यात्मक संबंधों पर कोई असर नहीं पड़ा। तमाम क्षेत्रीय विवाद और राजनीतिक भिन्नताओं के होने के बावजूद भारत ने चीन के साथ आर्थिक संबंध विकसित हुए। भारत ने दूसरी बार 'बेल्ट एंड रोड इनिशियेटिव' की मिटिंग में हिस्सा नहीं लिया क्योंकि उसे ऐसा लगा कि चीन पाकिस्तान इकोनॉमिक कोरिडोर के निर्णाण से भारत की संप्रभुता को धक्का लगा। इसके अलावे चीन ने भारत का कई मुद्दों पर समर्थन एवं सहयोग नहीं किया। इन मुद्दों में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में सदस्यता का मामला, नाभिकीय हथियारों के आपूर्तिकर्त्ताओं के समूह और आतंकवाद के विषय उल्लेखनीय है।[7] यहॉ एक बात काबिलेगौर है कि लगभग साढ़े सात दशकों से भारत ने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के स्थाई सदस्यों हितों का ही संवर्धन किया है। वैसे देखा जाय तो यह एक सर्वाधिक अलोकतांत्रिक संस्था है। इसलिए यह समय की माँग है कि इनका पुनर्गठन किया जाय और इसकी सदस्यता में विस्तार किया जाय और सभी को वीटो पॉवर का अधिकार प्राप्त हो और कोई निर्णय सामूहिक तरीके से किए जा सकें।

सततता और परिवर्तन अंतर्राष्ट्रीय राजनीति का मुख्य केन्द्र बिन्दु है और यही इसकी चारित्रिक विशेषता भी है। ऐसी कई राजनीतिक प्रणालियॉ है जो परिवर्तन को स्वीकार करती है। एकाधिकारवादी प्रणाली में समांगी जनांकिकी होती है जो लोकतांत्रिक राज्यों की अपेक्षा अधिक सुगमता, शीध्रता और सहजता से परिवर्तन को स्वीकार करती है। जबकि इसके ठीक विपरीत लोकतांत्रिक व्यवस्था में विषमांगी एवं बहुप्रजातीय जनांकिकी स्वरूप होता है। यहॉ विविध तरीके के सामाजिक संस्तरण होते है और राजनीतिक रूप से बहुदलीय प्रणाली अस्तित्वमान होती है। लेकिन कई एक राज्य या राष्ट्र ऐसे भी है जो विकास की शर्तों के आगे नाकाम हो चुके है। तकनीकी अन्वेषणों ने निश्चित रूप से प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया है।

लेकिन राजनीतिक प्रणालियों ने इसे अपने स्वार्थ के लिए ही इस्तेमाल किया। इसलिए तकनीकी परिवर्तनों के सापेक्ष निर्णयन प्रक्रिया में परिवर्तन सुस्ती के साथ दृष्टिगोचर हुए है। राष्ट्रों के मध्य संबंधों में भी अतीत की छाप दिखाई पड़ती है ओर वो प्रायः परिवर्तन के समय परिलक्षित होती है। लेकिन समय के साथ जो भी परिवर्तन अनुभूत होते है उसमें अमेरिका की हनक भी दिखाई पड़ जाती है जो समूचे अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करती है, लेकिन साथ ही साथ निजी स्तर पर भी निर्णयन पर असर पड़ता है।

निष्कर्ष –

सम्भवतः उचित ढ़ंग से इस पर विचार हुआ कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में वर्तमान में नायकत्व में कमी आ रही है, विश्व परिदृश्य में नए उभरते हुए शक्तिशाली देशों ने एक ऐसा वातावरण तैयार कर दिया है जिसमें हम एकध्रुवीय व्यवस्था से बहुध्रुवीय व्यवस्था की तरफ आगे बढ़ रहें है। यह निश्चित रूप से कहॉ जा सकता है कि भविष्य की बहुध्रुवीय व्यवस्था अपने पूर्व की बहुध्रुवीय व्यवस्थाओं से काफी अलग नहीं होगा जिससे अनिश्चितता व अस्थायीत्व का दौर बन जाएगा। नाभिकीय हथियारों के कारण भी अस्थिरता उत्पन्न हो सकती है। जैसा कि विद्वानों का मानना है कि मध्य स्तर की शक्तियॉ, छोटे स्तर की शक्तियॉ तथा गैर राज्य कर्त्ता जिनके पास नाभिकीय हथियार है, वे सभी मिलकर विश्व सुरक्षा के लिए चुनौती पेश कर दें। लेकिन यहॉ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि केवल आर्थिक मजबूती से कोई देश वैश्विक महाशक्ति नहीं हो सकता। यह हार्ड पावर तथा साफ्ट पावर का मिश्रण है जिसमें सैन्य व आर्थिक शक्ति हार्ड पावर का कार्य करती है तथा साफ्ट पावर के लिए प्रतिष्ठा, सांस्कृतिक प्रभाव तथा परम्परा मुख्य भूमिका में होते है। एशिया के अन्दर भू–राजनीति में जहॉ एक तरफ चीन उभर रहा है वहीं भारत भी उसमें पीछे ही है। अमेरिका तथा यूरोप की भू–राजनीति में जो स्थिति 19 वीं तथा 20 वीं सदी में थी वही स्थिति एशिया के अन्दर 21 वीं सदी में दिखाई दे रही है।[8] अतः स्पष्ट है कि नयी विश्व व्यवस्था गतिशील हो गयी है। जैसा कि फरीद जकारिया का मानना है बहुध्रुवीय विश्व के सहअस्तित्व के लिए पूर्व तथा पश्चिम को 21 वीं सदी के साथ मिलकर चलना होगा।

संदर्भ

[1] Hedly Bull. (1977). The Anarchical Society. New York: Columbia University Press.P.3-21

[2] Andrew Hurrell (2007). On Global Order: Power, Values, and the Constitution of International Society. Oxford University Press. P.3

[3] Amitav Acharya (2014). The End of American World Order. Cambridge: Polity. P.4

[4] Amitav Acharya (2014). The End of American World Order. Cambridge: Polity. P.5

[5] https://nationalinterest.org/feature/america-must-counter-chinas-great-power-threat-military-strength-51997?page=0%2C1

[6] For example "Since the US government imposed sanctions on the government of Venezuela Reliance Industries Ltd has been in close contact with representatives from US State Department to ensure full compliance".

[7] China has been using its veto power to keep India under pressure on the issue of listing Jaish –e Mohammed chief as a global terrorist.

[8] Herd, G.P. (2010) - Great Powers and Strategic Stability in the 21st Century: Competing Visions of World Order, Routledge.p.74.